Artistic Narration Dec. 2014, Vol. VI http://anubooks.com/product/artistic-narration
(p) ISSN: 0976-7444, (e) ISSN: 2395-7247

6

राजस्थानी कला व संस्कृति का सहोदर स्वरूप

डॉ0 रीता सिंह*

भारतीय कला भारतवर्ष के विचार धर्म, दर्शन एवं तत्वज्ञान का दर्पण है। यहाँ की परम्परा में जीवन के किसी भी क्षेत्र में "असुन्दर" को बर्दाश्त नहीं किया गया है। यहाँ का कण–कण, छन्द, राग और रस से भरा हुआ है। तत्ववाद, कल्पनात्मक विस्तार और ऐतिहासिक परम्परा का प्रच्छन्न प्राधान्य भारतीय कला एवं धर्म में निहित है।

कला से संस्कृति का जन्म है या संस्कृति से कला का जन्म हुआ, यह प्रश्न उतना ही जटिल है जितना की बीज और वृक्ष का–दोनों में से कौन पहले प्रकाश में आया, इसका निर्णय कौन करे। कला से पूर्व संस्कृति प्रकट हुई या कला के पश्चात् सांस्कृतिक भावनाओं ने जन्म लिया। पाषाण, ताम्र और लौह युग के मानवों ने अपने–अपने समय में अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार जो कलात्मक विकास किया है वह पुरातत्व की खोज ने इतिहास के रूप में प्रकट कर दिया है जितनी संस्कृति मानव में उत्पन्न हुई उतनी ही कलात्मक प्रगति भी उसने की। कला मानव संस्कृति का मूर्त स्वरूप है। जो कुछ भी सांस्कृतिक प्रगति मनुष्य के द्वारा हुई वे सब उसने उसी काल में रेखाबद्ध भी कर लेने का प्रयत्न किया। शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण चित्र, मिट्टी, काष्ठ, धातु, चर्म आदि उपकरणों पर चित्रित आकृतियाँ उस मानव की युगों तक की प्रगति के साक्षी है।

भारतीय कला व संस्कृति की यशो गाथा के जीवत प्रमाण हिन्देशिया से लेकर मध्य एशिया तक के विस्तृत भू–भाग में दृष्टिगोचर होते हैं। वर्तमान में हम यदि इस विस्तृत भू–भाग को भारतीय कला व संस्कृति से प्रभावित देखते हैं, तो आश्चर्य होता है कि उस समय यह सब कैसे सम्भव हुआ होगा। भारतीय कला की प्राचीन अजन्ता की गुफाओं में जो अनुपम सौन्दर्य विद्यमान है उसके साक्ष्य, आज विश्व के सामने विद्यमान हैं। अजन्ता की गुफाएं त्रिवेणी (चित्रकला, मूर्तिकला व स्थापत्य कला) के नाम से भी जानी जाती है। अजन्ता की गुफा चित्रों की विषय वस्तु भगवान बुद्ध से सम्बन्धित रही है। भगवान बुद्ध को अन्य मानव आकृतियों की अपेक्षा बड़े आकर में बनाया गया है। पद्मपाणि बोधिसत्व, मार विजय, माता–पुत्र, हंस जातक, विदुर पंडित आदि चित्रों की उत्कृष्टता के कारण अजन्ता विश्व प्रसिद्ध है। वही राजस्थान की लघु चित्र परम्परा से भी कोई अन्जान नहीं है। राजस्थान में काव्य और चित्रकला की समानान्तरता के विकास क्रम में मध्यकाल अपना प्रमुख स्थान रखता है। चित्रकला की दृष्टि से मध्य युग की महान देन राजस्थानी चित्रशैली है। 15वीं शती से देश में सांस्कृतिक पुनरूत्थान की एक व्यापक लहर आरम्भ हुई। केशव, बिहारी, सूर, तुलसी, मतिराम, रामानन्द, कबीर, चैतन्य आदि से भक्ति–आन्दोलन को बल मिला। अनेक हिन्दु–मुस्लिम उदार राज्यों की स्थापना हुई जहाँ भारतीय तथा ईरानी आदि तत्वों के सम्मिश्रण से चित्रकला की नवीन शैली (मुगल शैली) का प्रादुर्भाव हुआ। मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन एवं नवीन वैष्णव धर्म से प्रेरणा पाकर जिस नवीन कला शैली का उदय हुआ, वह राजस्थानी शैली कहलायी।

**(यू0जी0सी0), पी0डी0डब्लू0एफ0, ललित कला विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ*

(p) ISSN: 0976-7444, (e) ISSN: 2395-7247

यह कला शैली अपनी परम्परागत पद्धति की रक्षा करते हुए विभिन्न शैलियों के आकर्षणों एवं प्रभावों को आत्मसात् करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर होती गई। राजस्थानी शैली विशुद्ध भारतीय है।

किन्तु कलाकार के हृदय की आनन्द अनुभूति है। कलाकार ने रूढ़ि को त्यागकर, स्वतन्त्र होकर जो देखा तथा अध्ययन किया, उसी को कलाकार ने अपने चित्रों का विषय बनाया। कल्पना प्रचुर इस शैली के काव्य, राधा–कृष्ण, नायक–नायिका, रागमालायें, प्रेम–कथायें, लोक कथायें, धार्मिक रीति–रिवाज एवं सामाजिक जन–जीवन जैसे विषयों से मुख्यतः सम्बन्धित रही। प्रायः चित्रों में काव्यमयी कल्पना की अभिव्यक्ति की बहुलता है। लगभग 1650 ई० में बना "राधा कृष्ण की अनबन" का चित्र मेवाड़ शैली का है जो गीत गोविन्द पर आधारित है। चित्र को मध्य से वृक्ष से विभाजित किया है किन्तु आकाश एवं प्रवाहित जल सम्पूर्ण चित्र को बाँधे है। चित्र में एक तरफ राधा कमल पुष्प के आसन पर उदासीन मुद्रा में विराजमान है और सखी उनसे कुछ कह रही है वहीं दूसरी ओर कृष्ण बाँसुरी हाथ में पकड़े विपरीत दिशा में जा रहे है, और दोनों के मुख विपरीत दिशा में है। चित्र में कोमलता, लयात्मकता व सजीवता है। यह चित्र कुँवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में है।

राजस्थानी कला अपने लालित्य के कारण ही अनोखी होती है। कलाओं में धर्म की भूमिका अधिक है। जिस शैली की आधारभूमि धर्म पर आधारित होती है वह चित्र शैली स्वाभाविक रूप से फलीभूत होती है, क्योंकि हमारी संस्कृति का मूलाधार धर्म ही है। राजस्थानी राजाओं को धार्मिक प्रवृति व कला प्रेम विरासत में मिला है। यही संस्कार संस्कारित होते–होते एक आस्था का मूर्त आधार बने, क्योंकि यहाँ अधिकांशतः सभी राजाओं में बल्लभ सम्प्रदाय की शिक्षा ग्रहण की थी। इस कारण सभी के प्रिय राधा–कृष्ण का सर्वत्र गान स्वाभाविक था।

राजस्थान में काव्य और चित्रकला की समानान्तरता के विकासक्रम में मध्यकाल अपना प्रमुख स्थान रखता है ऐसा अनुभव होता है कि कवि और चित्रकार साथ–साथ मिलकर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते थे। जहाँ कवि बारहमासा का वर्णन कविता में करते थे वहीं चित्रकार तूलिका द्वारा रंग और रेखाओं से वर्णन करते थे जहाँ राग–रागिनियाँ लिखी जाती थी वही उन पर बड़ी कुशलता से चित्रण कार्य होता था। इस परम्परा का सम्पूर्ण श्रेय राजपूत राजाओं को ही जाता है। यहाँ के

(p) ISSN: 0976-7444, (e) ISSN: 2395-7247

राजपूत राजाओं का कवि और चित्रकारों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त था और अभिव्यक्ति की पूर्ण आजादी भी थी।

सांस्कृतिक दृष्टि से राजस्थानी चित्रकला का आधार काव्य ही रहा है। यहाँ के राजाओं ने चित्रकारों और कवियों को आश्रय और सम्मान इसलिए दिया क्योंकि वे स्वयं ललित कलाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने काव्य को चित्रित किया और चित्रों को शब्दों से लिखा। इसीलिए चित्रकला सदैव काव्य की अनुगामिनी रहकर रसानुभूति के साधारणीकरण में काव्य की सहायक रही है। अतः राजस्थान की लगभग सभी शैलियों में कृष्ण–राधिका का काव्यात्मक चित्रण हुआ। यहाँ तक की कला की मुख्य धारा के चित्रण का अनुमान राजपूत शैली के चित्रों से ही लगाया जा सकता है। 18वी. शती. मेवाड़ (राजस्थानी) शैली में गीत गोविन्द काव्य के आधार पर कागज पर चित्रांकन कार्य हुआ है। जिनमें श्री कृष्ण व राधा जी के विभिन्न क्रियाकलापों का अंकन चित्रकार ने बड़ी सुन्दरता से किया है। चित्रों के ऊपरी हिस्सों में पीले हाशिये कुछ मोटे बने है एवं उस पर चित्र से सम्बन्धित पंक्तियाँ लिखी हुई है।

लगभग 1760 ई. में बूंदी शैली में बने चित्र, "नायक काँटा निकालते हुए" में कोमल, लयात्मक रेखाकंन अत्यन्त शोभनीय है। सपाट हरे रंग की पृष्ठ भूमि में बने इस चित्र में नायिका ने पीले–लाल रंग के वस्त्र पहने है। आभूषणों से सुसज्जित नायिका के पाँव से नायक घुटनों के बल नीचे बैठकर काँटा निकाल रहा है व चित्र में काले–सफेद रंग में बने घोड़े में गति विद्यमान है। सम्पूर्ण चित्र अत्यन्त सुन्दर है। इसी प्रकार 1800 ई. में बना "मदिरा मस्त महिलायें" चित्र है। यह जोधपुर शैली का चित्र है जिसमें दो महिलाए एक दूसरे के कधों पर हाथ रखे बैठी है और मदिरा पान कर रही है। ये दोनों ही चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में है।

राजस्थानी चितेरों ने तूलिका प्रयोग बहुत कुछ लेखनी के समान किया है। राजस्थानी काव्य शैली रेखा–प्रधान शैली है और वर्ण योजना का आधार बहुत ही मनोवैज्ञानिक है। रसों के प्रतिपादन में चित्रों की पृष्ठभूमि रसमय हो गयी है। राजस्थानी कलाएँ अधिक विकसित और सूक्ष्म थी। एक ओर धर्म भावना से ओत–प्रोत थी, वहीं दूसरी ओर शुद्ध कलात्मक भी थी। इसी कारण विदेशी आक्रमणों से ये अपनी रक्षा कर सकी। साथ ही साथ भारतीय संस्कृति और धर्म की रक्षा की। विश्व में भारतीय काव्य और चित्रकला की यही पहचान है। राजस्थान की काव्य और कलाएँ विश्व की कलाओं की

(p) ISSN: 0976-7444, (e) ISSN: 2395-7247

सम्पन्नता अपने में समेटे हुए है जिससे कलाओं के सम्पूर्ण तत्वों का इसमें समावेश है और तभी यह कला संस्कृति का प्रतीक बन गयी है।

भारतीय राजस्थानी शैली में भी भारतीय संस्कृति की छाप इनके चित्रों के विषयों में स्पष्ट झलकती है। रामायण, महाभारत, राग–रागिनी, गीत–गोविन्द, रसमंजरी आदि अनेक धार्मिक व पौराणिक ग्रन्थ हैं जिन्हें उस समय के कलाकारों द्वारा बड़ी ही कलात्मकता से चित्रित किया गया है। राजस्थानी कलाकारों ने अपने चित्रों में चित्रित विषयों के अंकन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में राजस्थानी समाज और संस्कृति को सर्वोपरि रखा है। राजस्थानी कलाकार ने राजस्थानी संस्कृति की जो पहचान अपने चित्रों के माध्यम से उस समय व्यक्त की वह आज भी मानव को उस संस्कृति को कला में विद्यमान रखने के लिये प्रेरित करती है।

लोक–मानस की अनेक–मुखी अभिव्यक्तियों के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि संसार के प्रायः सभी देशों में उपास्य वीरनायक, भयावह राक्षस और अलौकिक देवी–देवता अथवा अतिप्राकृतिक शक्तियाँ किसी न किसी रूप में निरन्तर सत्ता बनाये रही है।परम्पराएँ जिन्हें मनुष्य ने बनाया है, अपना प्रभाव बाहर से डालती हैं किन्तु कला भीतर से मानव स्वभाव को रूपान्तरित करती है। कला, सामाजिक अनुभव के साथ मनुष्य की प्रवृतियों तथा भावनाओं के संश्लेषण एवं समाधान से युक्त स्वरूप की अभिव्यक्ति है।